आमेर जयपुर राज्य का एक अध्ययन

*डॉ. गिरधारी लाल मीणा

शोध सारांश

जयपुर राज्य राजपुताना के उत्तर पश्चिम व पूर्व में स्थित है यह अक्षांश 25.41'' से 28.34'' उत्तरी अक्षांश के बीच व देशांतर 74.41'' से 77.13'' से 77.13'' पूर्वी देशांतर तक 15601 मील तक फैला हुआ है। राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर इसका नाम सन् 1728 में जयपुर नगर बसने पर जयपुर कहलाया। इसके पहले यह आमेर राज्य कहलाता था।

सीमाएं :– जयपुर राज्य राजपूताना के उत्तरी पूर्वी भाग में स्थित था। इसके उत्तर में बीकानेर, लोहरू व पटियाला राज्य, पूर्व में अलवर, भरतपुर, करौली, धौलपुर व ग्वालियर राज्य, दक्षिण में ग्वालियर, कोटा, बूंदी, टोंक व उदयपुर राज्य, तथा पश्चिम में अजमेर मारवाड़ा, किशनगढ़, जोधपुर व बीकानेर राज्य स्थित थे। यह राज्य दक्षिण पूर्व में अधिक विस्तृत, ओर उत्तरी भाग बीच के भाग से कुछ अधिक चौड़ा था तथा इसकी अधिकतम लम्बाई पूर्व से पश्चिम तक 140 मील ओर चौड़ाई 196 मील थी। कुल क्षेत्रफल, जैसा की पहले बताया जा चुका है 15,601 वर्ग मील है। ''यह राज्य सवाई जयसिंह के समय में दिल्ली तक फैला हुआ था, लेकिन उसकी मृत्यु (सन्–1743) के बाद कामां, दबोई व पहाड़ी भरतपुर राज्य ने तथा थानागाजी, उजीबगढ़, बहरोड़, मंजपुर, प्रतापगढ़ आदि अलवर राज्य ने नारनौल, कांती आदि झझर राज्य ने टोंक व रामपुरा टोंक राज्य अंग्रेजों ने अपने राज्य में मिला लिया था।'' (जगदीश सिंह गहलोत, कछवाहों का इतिहास)

प्राकृतिक दशाः – यह तीन प्राकृतिक भागों में विभक्त हैं। पहाड़ी भाग में इस राज्य के दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर पहाड़ी श्रृंखला है, जो अड़ावला पर्वत की शाखाएं हैं। इस श्रखला में नदियों के मैदानी भाग हैं, और उत्तरी पहाड़ी श्रृखला सांभर झील के उत्तर से खेतड़ी के उत्तर में सिंघाना तक विस्तृत है। एक ओर पहाड़ी श्रृंखला जयपुर राज्य के ठीक बीच से आमेर होती हुई तोरावाटी तक चली गई है। जिसमें नाहरगढ़, जयगढ़, अभगढ़, रामगढ़ व बैराठ की पहाड़ियां आती हैं। तीसरी पहाड़ी श्रृंखला मालपुरा के दक्षिण भाग से सवाई–माधोपुर के उत्तरी भाग में व लालसोट होती हुई हिण्डोन से टोडाभीम तक चली गई। लालसोट से यह श्रृंखला बहुत ऊँची हो गई। चौथी श्रृंखला राज्य के दक्षिणी पूर्वी भाग में सवाई–माधोपुर के दक्षिणी भाग गंगापुर से होती हुई आगे चली गई। रेवणजा डूंगर, रणथम्भौर, खण्डार व कादिरपुर के पहाड़ सर्वाधिक ऊँचे है।

राज्य का उत्तर पश्चिमी भाग जो शेखावाटी कहलाता है, रेतीला है। जयपुर के पश्चिम की ओर किशनगढ़ की सीमा तक भूमि ऊँची होती चली गई है। दक्षिण–पूर्व में बनास के पास की भूमि ढालू तथा उपजाऊ है।

नदियां :– इस राज्य की मुख्य नदियां बनास व बाण गंगा है। बनास देवली की ओर से आकर मालपुरा टोंक ओर सवाई माधोपुर को सींचती हुई, दक्षिण को मुड़कर चम्बल नदी में जा मिलती है। बाणगंगा नदी बैराठ के पहाड़ों के दक्षिणी ढाल से निकलकर कुछ दूर दक्षिण को बहकर रामगढ़ के बाँध में अपना पानी छोड़ती हुई पूर्व की ओर मुड़ जाती हैं ओर आमेर, दौसा व हिण्डोन होती हुई भरतपुर की और चली जाती है। नाहरगढ़ से एक नाला बहकर ढूंढ

नदी में जयपुर से लगभग 7 कि.मी. आगे जाकर मिलता है। इस राज्य की विभिन्न नदियों व नालों को रोककर टोरड़ीसागर, मोरासागर, सैथल बांध, कालिख बंध व रामगढ़ जैसे कई बांध बनाये गये हैं। जयपुर राज्य में खारे पानी की प्राकृतिक झील सांभर में स्थित है। जहाँ से पश्चिम में जोधपुर राज्य की सीमा आरम्भ होती है।

प्रमुख ऐतिहासिक स्थान– जयपुर, आमेर, सांगानेर, रामगढ़, चाकसू, दौसा, बसवा, डिम्गी, फतहपुर, रैड, हिण्डोन, लालसोट, नराणा, बैराठ, रणथम्भौर, आभानेरी, टोड़ा रायसिंह, सांभर, फुलेरा, बांदीकुई, भानगढ़, अजबगढ़ ओर मांच हैं।

आमेर (जयपुर) राज्य के प्रमुख राजा– दुल्हराय, कांकिल देव, हरगुण जानड़देव, पजवनदेव, मालसी, बिजलदेव, रामदेव, किल्हण, कुंतल, जुणसी, उदयकरण, नरसिंह, उदरण, चन्द्रसेन, पृथ्वीराज, पूरणमल, भीमदेव, रत्नसिंह, सांगा, आसकरण, भारमल, भगवन्तदास, मानसिंह, भावसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह, रामसिंह, बिसनसिंह।

दुल्हरायः – दुल्हराय, कछवाहों का राज्य ढूंढाड़ में स्थापित करने वाला था। 12वीं शताब्दी में ढूंढाड़ प्रदेशन में चौहानों, बड़गूजरों व मीणों के छोटे–छोटे राज्य थे, जो दिल्ली के चौहानों के अधीन थे। वंशावलियों के अनुसार दूल्हराय ने बड़गूजरों से वैवाहिक सम्बन्ध बनाकर दौसा पर अधिकार कर लिया। छूट्टन लाल शर्मा ने अपनी पुस्तक मत्स्य संघ का पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक इतिहास में दौसा का वर्णन इस प्रकार किया है– ''दौसा मत्स्य जनपद का अभिन्न अंग था। दौसा का ईंटों का मंदिर, विराट नगर में प्राप्त ईंटों के मंदिर के समान व समकालीन हैं, कार्लाईल ने इन दोनों को 2000 वर्ष का माना है। जबकि डी. आर. साहनी ने इन्हें चौदहवीं शताब्दी का माना है। सन् 1871–72 में कार्लाईल को 40 से भी अधिक प्रस्तर की प्रतिमाएं मिली थी एवं अन्य प्राचीन प्रस्तर के उपकरण भी मिले दौसा के नीलकण्ठ मंदिर के प्रस्तर स्तम्भ बारहवीं शताब्दी के माने जाते हैं, जो सोमनाथ के मंदिर कक्ष में लगे स्तम्भों में समानता रखते हैं। इसके पास ही मीणों का राज्य था जिसका नाम माच था। इस पर हमला कर अपने कब्जे में कर लिया तथा यहाँ पर रामगढ़ का किला व जमुवाय माता का मंदिर बनवाया। यहीं कछवाहा नरेशों की कुल देवी है। जमुवारामगढ़ में कनिंघम को संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण प्रस्तर लेख प्राप्त हुआ था। जो विक्रम सम्वत् 1669 व शाके सम्वत् 1534 का है। यह प्रस्तर लेख जहांगीर के शासन में निर्मित हुआ था जिसका निर्माण पद्म पुरोहित के पुत्र पिताम्बर ने करवाया था। इसमें महाराजा मानसिंह द्वारा किये गये युद्धों का वर्णन किया गया है। इस लेख में मानसिंह के पिता का नाम भगवत दास बताया गया है। दूल्हेराय दौसा पर अधिकार करने के बाद मीणों के गढ़ मांच (जमुवारामगढ़) पर विजय प्राप्त की तथा रामगढ़ को दूसरी राजधानी बनाया। छुट्टन लाल शर्मा ने दूल्हेराय की मृत्यु मीणों से संघर्ष करते हुए बताई है।

कांकिलदेव :– दूल्हेराय के पश्चात उसके पुत्र कांकिल देव ने सुसावत मीणा प्रमुख भत्तों से आमेर जीता और इसी को अपनी राजधानी बनाया जो 1723 में जयपुर नगर बसने तक छः शताब्दियों तक कछवाहों की राजधानी रही। आमेर पर अधिकार करने के बाद कांकिलदेव ने बैराठ के यादव शासकों को परास्त कर बैराठ और मैड को अपने अधीन कर लिया। कांकिल का मीणों के दूसरे गढ़ नाहन से भी संघर्ष के साक्ष्य मिलते हैं। कांकिलदेव व इसके पुत्र हाणुदेव को निरंतर मीणों से युद्ध करना पड़ा।

पजवनदेव :– यह पृथ्वीराज चौहान का समकालीन था तथा इसने पृथ्वीराज की ओर से महोबा और 1192 ई. में तराईन के युद्ध में भाग लिया था। इसके बाद का कछवाहों का इतिहास अधिक स्पष्ट नहीं है। बाद में जाकर 1503 में चन्द्रसेन के पुत्र पृथ्वीराज का उल्लेख मिलता है।

पृथ्वीराज :– यह सांगा का समकालीन था और खानवा के युद्ध में पृथ्वीराज ने सांगा की ओर से भाग लिया था। इसकी मृत्यु के बाद इसका चौथा पुत्र भारमल आमेर का शासक बना। इसी के समय दिल्ली के मुगल सम्राट अकबर का शासन आरम्भ हुआ।

इस प्रकार दूल्हेराय, कांकिलदेव, हणूदेव, जानड़देव को मीणा प्रमुखों से ढूंढ़ाड में निरन्तर संघर्ष करना पड़ा। कछवाहा नरेशों को दौसा के बड़गूजरों, आमेर, मांच (जमुवारामगढ़), खोह गंग आदि मीणा प्रमुखों से निरन्तर संघर्ष करते हुए अपने राज्य के विस्तार की प्रक्रिया को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया।

भारमल :– भारमल ने 1547 ई. को आमेर की राजगद्दी सम्भाली। देवी प्रसाद के अनुसार इस समय आमेर की हालत अच्छी नहीं थी। यहां मीणा सरदार कछवाहों के विरूद्ध लगातार विद्रोह कर रहे थे। इसी समय मेवात का सूबेदार सरफुद्दीन 1561 ई. में आमेर आया तब मजबूर होकर भारमल ने अजमेर आते समय बादशाह अकबर से सांगानेर में मिलकर उसकी अधीनता स्वीकार कर 6 फरवरी 1562 ई. को अजमेर लौटते वक्त सांभर में उसके साथ जेष्ठ पुत्री का विवाह किया। बाद में भारमल ने बादशाही सेना में प्रविष्ट होकर मुगलों की ओर से मेड़ता पर 1562 ई. जोधपुर पर 1563 ई., चित्तौड़ पर 1568 ई. रणथम्भौर व कालिंजर पर 1569 ई. के युद्धों में विजयी पाई। इसके बाद उसने नाहण नगर के मीणों को पराजित किया और उसके स्थान पर लवाण नामक कस्बा बसाया।

भारमल का देहांत 27 जनवरी 1574 ई. को हुआ। भारमल एक राजनीतिज्ञ व दूरदर्शी नरेश था जिसने अपने राज्य को संकटमय स्थिति से निकाल कर सुदृढ़ व स्थायी किया तथा मुगलों से मिलकर अपने राजघराने को राजनैतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया।

भगवन्तदास' :– भगवन्तदास 1574 ई. के आस–पास आमेर का शासक बना तथा इसने मानसिंह को गोद लिया। इसने गुजरात, लाहौर, चित्तौड़, रणथम्भौर, ईडर, मेवाड़ आदि के अभियानों में व पठानों तथा पंजाब के पहाड़ी राज्यों के दमन में मुगलों की ओर से भाग लिया। 1585 ई. में भगवन्तदास को मुगल सेनापति बनाकर कश्मीर भेजा गया जहां उसने विजय प्राप्त की। भगवन्तदास ने अजमेर, आगरा, फतेहपुर सीकरी तथा लौहार में कई महल बनवाये थे।

मानसिंह :– भगवन्तदास की मृत्यु के बाद 14 नवम्बर 1589 ई. को आमेर की राजगद्दी पर इसका गोद लिया पुत्र मानसिंह बैठा। इसके गद्दी पर बैठते ही मुगल बादशाह अकबर ने राजा की पदवी दी। मानसिंह ने काबुल, कांधार, उड़ीसा, बिहार, बंगाल आदि की सूबेदारी कुशलतापूर्वक की। मानसिंह ने लगभग 25 वर्ष तक राज्य किया व लगभग 56 वर्ष मुगल सेवा में रहा। वह अकबर के दरबार के 9 रत्नों में गिना जाता था। वह केवल रणनीतिज्ञ ही नहीं था बल्कि चतुर राजनीतिज्ञ भी था जिसने आमेर को मुगल साम्राज्य में प्रमुख स्थान दिलाया। बंगाल और बिहार आदि की सूबेदारी करने व विभिन्न लड़ाईयों में विजय पाने के कारण आमेर राज्य की समृद्धि और सम्पत्ति में अपार वृद्धि हुई।

मानसिंह के बाद दुर्जनसिंह और भावसिंह राजा बने लेकिन वे कुशल राजनीतिज्ञ नहीं थे। इसलिये इस समय जोधपुर राज्य का मुगल दरबार में अत्यधिक प्रभाव बढ़ गया।

मिर्जा राजा जयसिंह :– 1621 ई. में भावसिंह का पुत्र जयसिंह आमेर की राजगद्दी पर बैठा। जहांगीर ने इसे दिल्ली बुलाया और इसको तीन हजारी जात व 1500 सवार का मनसब व राजा की पदवी दी। जयसिंह ने मुगलों की ओर दक्षिण के युद्धों में (मराठों ओर निजाम के विरूद्ध) युद्धों में भाग लिया। दौलताबाद की सूबेदारी के बाद पांच हजारी जात व पांच हजारी मनसब देकर बादशाह ने जयसिंह को काबुल की और भेजा जहां उसने कांगड़ा, कांधार, पेशावर, काबुल आदि की लड़ाईयों में विजय पाई। बादशाह ने 1639 में रावलपिण्डी बुलाकर ''मिर्जाराजा'' की पदवी दी।

जयसिंह ने मुगल उत्तराधिकारी युद्ध में औरंगजेब की सहायता की। औरंगजेब के बादशाह बनने के बाद जयसिंह को शिवाजी को नियंत्रण में करने लिये दक्षिण भेजा गया। मिर्जा राजा जयसिंह मध्यकालीन भारतीय इतिहास का अद्वितीय कूटनीतिज्ञ शासक था उसने पश्चिम में अफगानिस्तान के कंधार से लेकर पूर्व में मुंगेर और दक्षिण में बीजापुर तक मुगल सेनापति के रूप में अपना कर्त्तव्य निभाया। 27 अगस्त 1667 ई. को दक्षिण में बुरहानपर नामक

नगर में जयसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र रामसिंह और 1689 ई. में रामसिंह का पौत्र बिशनसिंह आमेर के शासक बने। जयसिंह का काल 1700 से 1743 ई. तक रहा। जयसिंह 1701 में दक्षिण औरंगजेब की सहायता के लिये गया और 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकार युद्ध में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने में सफल रहा।

जयसिंह मुगलकाल का एक अति महत्वपूर्ण, प्रभावशाली व राजनीतिज्ञ नरेश था। इसने जयपुर राज्य का विस्तार किया ओर शेखावाटी के सरदारों को अपने अधीन कर ढूंढ़ाड और शेखावाटी प्रदेशों को अपने नियंत्रण में कर राजनीतिक एकता स्थापित की। जयसिंह ने 4 जुलाई 1742 ई. को जयपुर में एक अश्वमेघ यज्ञ किया। जयसिंह ने जयपुर शहर की स्थापना की तथा जयपुर, दिल्ली, उज्जैन, बनारस और मथुरा में बड़ी–बड़ी वेदशालाएं तैयार करवायी। जयसिंह हिन्दुस्तानी गणित का पूरा जानकार था। साथ ही उसने पुरानी यूनानी किताबें भी देखी थीं।

ईश्वरी सिंह :– जयसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र ईश्वरी सिंह 1743 ई. में गद्दी पर बैठा लेकिन ईश्वरी सिंह के पूरे जीवनकाल में अपने भाई माधवसिंह से उत्तराधिकार युद्ध करना पड़ा। ईश्वरी सिंह के समय मराठों का राजस्थान में हस्तक्षेप जरूरत से अधिक हो गया था। ईश्वरीसिंह को एक तरफ मराठों के आक्रमण व दूसरी तरफ माधवसिंह के विरोध का सामना करना पड़ा। ईश्वरीसिंह को उदयपुर के महाराणा के हस्तक्षेप का सामना भी करना पड़ा। ईश्वरीसिंह को जोधपुर राज्य के झगड़ों में भी अनिच्छा से पड़ना पड़ा। अंत में जब 1750 ई. में होल्कर की सेना ने जयपुर की ओर चढ़ाई की तब अपने मंत्री हरगोविंद नाटाणी के विश्वासघात के कारण विषपान से ईश्वरीसिंह ने आत्महत्या कर ली।

ईश्वरीसिंह की मृत्यु के बाद मल्हावराव की सहायता से माधवसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा। मराठों ने अत्यधिक धन लेने के बाद भी अपने अत्याचारों में कमी नहीं की। माधवसिंह को मराठों से उनके उत्तर भारत में अफगानों से संघर्ष के लिये जाने और फिर दक्षिण में हैदराबाद की और जाने से कुछ समय के लिये राहत मिली।

लेकिन 1797 ई. में रघुनाथ राव ने फिर जयपुर की ओर कूच किया तब उसे 11 लाख रूपये देने पड़े। इसके बाद सन् 1798 ई. में जनकोजी सिंधिया ने 36 लाख रूपयों की मांग की, लेकिन पंजाब में अहमदशाह अब्दाली के आने का पता लगने पर मराठा मल्हार राव होल्कर, जनकोजी को अपने साथ लेकर दिल्ली की ओर चला गया।

माधवसिंह ने जयपुर में हवामहल, मोती डूंगरी व सांगानेर का किला बनवाया था। माधवसिंह ने 7 नगर बसावाये थे जिनमें रणथम्भौर के निकट माधोपुर अति प्रसिद्ध है।

माधवसिंह की मृत्यु के बाद पृथ्वीसिंह ने 1768 में 1770 तक जयपुर पर राज्य किया। इसके राज्य काल में माचेड़ी (अलवर) के प्रतापसिंह ने पृथ्वीसिंह की कमजोरी को देखकर शेखावाटी, मेवात तथा आगरा व मथुरा के कुछ भाग अपने अधिकार में कर लिये। इसके शासन काल में जयपुर राज्य और उसके सामंतो की आमदनी मिलाकर लगभग 77 लाख थी।

प्रतापसिंह :– प्रतापसिंह ने जयपुर पर 1778 से 1803 ई. तक शासन किया। प्रतापसिंह के समय उत्तरी भारत में मराठों का प्रभाव कम हो गया था। लेकिन जयपुर दरबार में प्रधानमंत्री खुशालीराम बोहरा और उप–प्रधानमंत्री दौलत राम हल्दिया का झगड़ा निरंतर चलता रहा। जिसके परिणाम जयपुर राज्य के लिये अच्छे नहीं रहे। इसके समय में महादजी सिंधिया ने जयपुर पर अपना हस्तक्षेप लगातार जारी रखा। डॉ. राघवेन्द्र सिंह मनोहर ने अपनी पुस्तक–जयपुर क्षेत्र के स्मारक और शिलालेख पृष्ठ–29 में प्रतापसिंह और मराठों के मध्य हुए युद्ध का वर्णन किया है– ''प्रतापसिंह के शासनकाल में जयपुर रियासत और मराठों के बीच 28 जुलाई 1787 को तूंगाका प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें एक तरफ जयपुर और जोधपुर की संयुक्त सेना थी दूसरी और मराठा सेनानायक महादजी सिंधिया था। महादजी के सहयोग के लिये फ्रेंच सेनानायक जनरल डिबोईन अपने सैन्य टुकड़ी के साथ उपस्थित था। इस

युद्ध के समय तूंगा के पास डिगी गांव में ग्वालनी के मीणों ने मराठा फौज के एक हाथी को पकड़ लिया व महाराजा प्रताप सिंह को भेंट किया जिससे जयपुर रियासत की सफलता के लिये शुभ शकुन माना गया। प्रताप सिंह का देहान्त 1803 ई. को हुआ ।

प्रताप सिंह के बाद जगत सिंह ने 1803 से 1819 ई. तक शासन किया। इसके समय में उत्तरी भारत में अंग्रेज और मराठों का संघर्ष आरम्भ हुआ। जगत सिंह और अंग्रेजों के बीच संधि हुई उससे जयपुर राज्य अंग्रेजों के अधीन हो गया।

जगत सिंह के बाद जयसिंह तृतीया ने 1819 से 1835 ई. तक जयपुर पर शासन किया। इसके समय में अंग्रेज रेजीडेण्टों का हस्तक्षेप जयपुर राज्य में निरंतर बढ़ता गया। इसके समय में तीन व्यक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा– इनमें राजमाता भटियाणी जी, सरावगी झूंथाराम व रावल बैरीशाल सिंह प्रमुख थे। इन तीनों के अनुचित कार्यों ने राज्य की दशा बद से बदतर कर दी।

महाराजा सवाई रामसिंह ने 1835 से 1880 ई. तक शासन किया। रामसिंह के समय विभिन्न सुधारों के कार्य किये गये। जिसमें विभिन्न परिषदों का गठन 1864 ई. में राज्य में कॉलेज और तारघर खोला गया। रामसिंह के समय ही जयपुर का नक्शा भी बनाया गया। तथा जयपुर से भरतपुर तक सड़क का निर्माण हुआ।

1857 ई. का विद्रोह भी प्रताप सिंह के समय ही हुआ था जिससे प्रताप सिंह ने अंग्रेजों की पूरी सहायता की। इसी संदर्भ में महाराजा रामसिंह ने गवर्नर जनरल को 6 दिसम्बर 1857 ई. को एक पत्र लिखा जिसका उल्लेख जगदीश सिंह गहलोत ने कछवाहों का इतिहास पुस्तक में किया है। रामसिंह के बाद सवाई माधोसिंह तृतीय 1880 से 1922 ई. और सवाई मानसिंह द्वितीय 1922 से 1946 ई. तक शासन किया। इन्हीं के शासन काल में आधुनिक जयपुर का निर्माण हुआ। और अन्ततः 30 मार्च 1946 ई. को जयपुर संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित हुआ जयपुर को राजधानी तथा महाराजा मानसिंह को राजप्रमुख बनाया गया।

***व्याख्यता**
इतिहास विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा (राज.)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मानकवि, सं. डॉ. मोती : राजविलास, राजस्थानी ग्रंथगार, जोधपुर, 1972, लाल मेनारिया
2. मेरूतुंग, अनु. डॉ. हजारीप्रसाद : प्रबन्धचिन्तामणि, काशीनगरी प्रचारणी सभा,
3. द्विवेदी : काशी, 1973,
4. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह : राजस्थान के खगारोत कछवाहों का इतिहास, प्रचशील प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 1984.
5. मनोहर, राघवेन्द्रसिंह : जयपुर क्षेत्र के ऐतिहासिक स्मारक व शिलालेख, तारा प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 1993.
6. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह : राजस्थान के राजघरानों का सांस्कृति अध्ययन, तारा प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 1996,
7. मनोहर, डॉ. शम्भूसिंह : राजस्थानी शोध निबन्ध, विवके प्रकाशन, जयपुर, 1974,